जनरल मेनेजर (P) पंजाब एवं सिंध बैंक एवं अन्य

बनाम

दया सिंह

सिविल अपील नंबर 4120/2007

28, जुलाई, 2010

(न्यायमूर्ति आर.वी. रवीन्द्रन और न्यायमूर्ति एच.एल. गोखले)

सेवा विधि-बर्खास्तगी-दुराचरण का आक्षेप-बैंक मेनेजर के विरुद्ध-दुराचरण सिद्ध -सेवा से बर्खास्तगी की सजा एवं संबंधित प्राधिकारियों द्वारा आर्थिक हानि की वसूली-रिट याचिका-उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकृत-अपील-अभिनिर्धारित: जांच अधिकारी का परिणाम दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित और सकारण था। प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों का कोई उल्लघंन नहीं हुआ-विभागीय अनुशासनात्मक मामले में न्यायिक समीक्षा का दायरा सीमित है-एक बार जब आरोप सिद्ध हो गए तो उच्च न्यायालय का हस्तक्षेप सही नहीं है-पंजाब एवं सिध बैंक अधिकारी/कर्मचारीगण (आचरण) विनियमन, 1981-विनियम 24-पंजाब एवं सिंध बैंक अधिकारी/कर्मचारीयों (अनुशासन एवं अपील), विनियमन, 1997-प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त-न्यायिक समीक्षा।

अपीलकर्ता बैंक में प्रत्यर्थी मेनेजर पर अपीलकर्ता बैंक द्वारा आरोप पत्र दायर किया गया। उसके खिलाफ आरोप थे कि उन्होने बिना किसी प्रतिभूति के काल्पनिक व्यक्तियों को बीस गैर-मौजूद एफडीआर के खिलाफ ऋण मांग स्वीकृत किए, कि उसने वस्तुओ और दस्तावेजो का प्रभार सौंपे बिना शाखा छोड़ दी, कि उसने बिना प्राधिकृत हुये के नियुक्त स्थान छोड़ दिया, कि वह सक्षम प्राधिकारी की बिना पूर्व अनुमति के किसी कंपनी के स्वीकृत ऋण का प्रत्याभूदाता बना, और वह अपनी पत्नी द्वारा अन्य बैक से लिए ऋण में बिना किसी पूर्व अनुमति के ऋण प्रत्याभूदाता बना। जांच

अधिकारी ने अभिनिर्धारित किया कि सभी आरोप सिद्ध हो चुके है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी के निष्कर्षो से सहमति जताते हुए माना कि प्रत्यर्थी ने पंजाब और सिंक बैंक अधिकारी/नियोक्ता (आचरण) विनियम, 1981 के खंड 3 (1) और 15 (वी) आर/डब्ल्यु विनियमन संख्या 24 के तहत कदाचार किया था। पंजाब एवं सिंध बैंक अधिकारी/कर्मचारीयों (अनुशासन एवं अपील), विनियमन, 1997 के तहत सेवा से बर्खास्तगी और आर्थिक हानि की वसूली का दंड लगाया गया। अपीलकर्ता प्राधिकरण ने आदेश की पुष्टि की।

सभी तीनों आदेशों को रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी गयी। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए आलोच्च आदेश को रद्द कर दिया कि प्रस्तुत दस्तावेज न तो विस्तृत थे और न ही उसकी प्रकृति के बारे मे स्पष्टीकरण दिया गया था, कि प्रस्तुत साक्ष्यों पर न तो विचार विर्मश और न ही विश्लेषण किया गया। कारणों कि अनुपस्थिति से प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लघंन हुआ। उच्च न्यायालय ने बैंक को निर्देशित किया कि नये तरीके से जाचं करते हुए प्रत्यर्थी को पुनः बहाल करें।

प्रत्यर्थी ने तर्क दिया कि दस्तावेजों से दुराचार साबित नहीं हुआ, और उसके विरुद्ध किसी आरोप के समर्थन में किसी भी उधारकर्ता को साक्षी के रुप में परीक्षित नहीं किया गया।

न्यायालय द्वारा अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया

1.1 अपीलकर्ता बैंक द्वारा जांच अधिकारी के समक्ष दुराचार स्थापित करने हेतु आवश्यक कदम उठाये। संबधित दस्तावेजों जिसमें बहीखाता प्रविष्टियां संबंधित गवाह के माध्यम से प्रस्तुत की गयी। प्रत्यर्थी पूर्ण रुप से जांच में सम्मिलित हुआ। उसके द्वारा जांच के दौरान एवं उसके बाद भी कोई स्पष्टीकरण पेश नहीं किया। जबकि सभी संबंधित प्रविष्टियां प्रत्यर्थी की हाथ से लिखी हुई थी, बैंक ने उधारकर्ताओ को बुलाना

आवश्यक नहीं सोचा। वास्तव में, जांच अधिकारी ने प्रत्यर्थी से कहा कि यदि वह बैंक द्वारा उसके विरुद्ध प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य का खंडन करना चाहता तो उसे उधारकर्ता को प्रस्तुत करना चाहिए। इन परिस्थितियों में, जांच अधिकारी द्वारा निकाले गये निष्कर्षो को बिना किसी साक्ष्य के समर्थन का नहीं माना जा सकता। उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रुप से यह निर्धारित करते हुये त्रुटि की है कि पेश किए दस्तावेज न तो विस्तृत थे और न ही उनका स्वरुप स्पष्ट किया गया। (पेरा 16) (82-एच, 83-ए-सी)

1.2 इस बात की स्पष्ट दस्तावेजी साक्ष्य प्रत्यर्थी के हस्तलेख में अभिलेख पर थी जो झूठे/कपटी/काल्पनिक लोगों के लिए बहुत बडी मात्रा में पैसा निकालने में उसकी भूमिका स्थापित हुई। बहीखाते की प्रविष्टियां साफ तौर पर दिखाती है कि जहां कही एफडीआर एक के नाम से थी, निकासी अलग-अलग नामों से दिखाई गयी और वे एफडीआर की मात्रा से कही अधिक थे। प्रत्यर्थी के पास कोई स्पष्टीकरण नहीं था और, इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया जाना था कि प्रत्यर्थी राशि का दुर्विनियोग कर चुका था। जांच अधिकारी द्वारा एक अच्छा आदेश देने के बावजूद, उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए हस्तक्षेप किया कि यह उसी तरह अधूरा/अनुचित है। उच्च न्यायालय ने बैंक मेनेजर की भूमिका को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया है। (पैरा 19) (85 एफ-एच, 86 ए)

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम बेला बागची (2005) 7 एससीसी 435, दमोह पन्ना सागर ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक बनाम मुन्ना लाल जैन (2005) 10 एससीसी 84 पर भरोसा किया।

प्रबन्ध निदेशक ईसीआईएल हैदराबाद बनाम बी करुणाकर एआईआर 1994 एससी 1074, सुरेश पथरेला बनाम ओरिएंटल बैक ऑफ कॉमर्स एआईआर 2007 एसी 199-में संदर्भित किया गया।

2.1 अनुशासनात्मक आदेश में कारणों की अनुपस्थिति आरोपित कर्मचारी से प्राकृतिक न्याय से इनकार के समान होगी। लेकिन तात्कालिक मामला निश्चित रुप से उस श्रेणी में एक नहीं था। एक बार आरोप साबित हो चुके है तो उच्च न्यायालय निर्णय के साथ हस्तक्षेप करने का कारण नहीं रखता है। एक बार आवश्यक सामग्री अभिलेख पर रख दी और जब आरोपित अधिकारी प्रस्ताव पर कोई स्पष्टीकरण नहीं रखता है, जांच अधिकारी कोई अन्य दृष्टिकोण नहीं रख सकता है। एक न्यायिक अधिकारी द्वारा लिखे गये आदेश की तरह बैक अधिकारी के आदेश का तरीका नहीं हो सकता है। फिर भी किसी को देखना होगा कि क्या आदेश पर्याप्त रुप से स्पष्ट है और इसमें निकाले गए निष्कर्ष को न्यायोचित ठहराने वाले कारण शामिल है।

2.2 यद्यपि अभिलेख पर पर्याप्त दस्तावेजी साक्ष्य थे, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करना चुना कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष जानबूझकर गलती वाले थे। निष्कर्ष ऐसा है जो बिना साक्ष्य पर आधारित है या ऐसा कि कोई उचित व्यक्ति नहीं पहुंचेगा। जब तक यह नहीं मालुम हो जाता कि कुछ संबंधित तथ्य/साक्ष्य पर विचार नहीं किया जावें या कि निश्चित अस्वीकार्य सामग्री को संज्ञान में लिया जा चुका हो, निष्कर्ष को विकृत नहीं कहा जा सकता है। कार्यालय अनुशासनात्मक मामालों में उच्च न्यायालय के लिए न्यायिक समीक्षा का क्षेत्र सीमित है। (पेरा 17 और 18) (83 जी एच, 84-ए-डी)

त्रिवेणी रबर और प्लास्टिक बनाम सीसीई एआईआर 1994 सुप्रीम कोर्ट 1341, अरुलवेलु और अन्य बनाम राज्य की ओर से लोक अभियोजक और अन्य (2009) 10 एससीसी 206, टी.एन. सी.एस. कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम के. मीराबाई (2006 2 एससीसी 255), भारतीय बैंक बनाम डेगाला श्रीरामुलु (1999) 5 एससीसी 768-भरोसा किया गया।

प्रकरण कानून संदर्भ:

एआईआर 1994 एससी 1074	संदर्भित	पैरा 13
एआईआर 2007 एससी 199	संदर्भित	पैरा14
एआईआर 1994 एससी 1341	भरोसा किया	पैरा 17
(2009) 10 एससीसी 206	भरोसा किया	पैरा 17
(2006) 02 एससीसी 255	भरोसा किया	पैरा 18
(1999) 5 एससीसी 768	भरोसा किया	पैरा 18
(2005) 7 एससीसी 435	भरोसा किया	पैरा 19
(2005) 10 एससीसी 84	भरोसा किया	पैरा 19

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील नंबर 4120/2007

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सिविल विविध संख्या 28546/2004 के निर्णय एवं आदेश दिनांक 25.01.2007 के से

अपीलकर्ताओं के की ओर से रजत अरोड़ा, राजीव नन्दा

दया सिंह (प्रत्यर्थी व्यक्तिगण रुप से)

न्यायालय का न्यायमूर्ति गोखले द्वारा निर्णय दिया गया।

1. इस अपील इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ सिविल रिट याचिका नंबर 2846/2004 के निर्णय व आदेश दिनांक 25.01.2007 को चुनौती देने का प्रयास करती है, जो प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल की गयी। प्रत्यर्थी प्रासंगणिक समय 1997-99 में पंजाब एवं सिंध बैंक कानपुर में शाखा प्रबंधक के पद पर कार्य कर रहा था और उसे विभागीय जांच आदेश दिनांक 06 जून 2003 के बाद दुराचरण के लिए बर्खास्त करने

का निर्देश दिया गये। प्रत्यर्थी ने इस आदेश एवं पश्चातवर्ती दो आदेशों को उच्च न्यायालय में अपनी रिट याचिका में चुनौती दी एवं आलोच्य निर्णय आदेश द्वारा इन आदेशों को अपास्त किया गया। बर्खास्तगी के आदेश को अपास्त करने के अलावा, उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को बहाल करने का निर्देश दिये गये उससे व्यथित होकर, बैक की ओर से महाप्रबंधक (का)द्वारा अपील की गयी। इसे लागू नहीं करने पर अवमानना याचिका दायर की। इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 7 मई 2007 द्वारा अवमानना की कार्यवाही पर स्थगन लगाया। परिणामस्वरुप, अपीलकर्ता की विशेष अनुमति याचिका दिनांक 06 सितम्बर 2007 से अनुमति दी गयी। अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता राजीव नंदा उपस्थित हुए। प्रत्यर्थी व्यक्तिशः उपस्थित हुआ।

<u>इस अपील से संबंधित सक्षिप्त तथ्य</u>

2. जैसा की उपर कहा गया, प्रत्यर्थी प्रंबंधक के रुप में अपीलकर्ता की शाखा (पहले एक एक्सटेंशन काउंटर) गुरु नानक गर्ल्स डिग्री कॉलेज, सुंदर नगर कानपुर में कार्य कर रहा था। दिनांक 08 मार्च 1999 को सतर्कता निरीक्षण में पाया गया था कि कुल 20 ऋण राशि 16 लाख 48 हजार के कई व्यक्तियों को एफडीआर के विरुद्ध दिये गये, कुल मिलाकर एफडीआर पूरी तरह से अलग-अलग व्यक्तियों के नाम पर थे। यह भी देखाा गया कि निकासी जो स्वीकृत की गयी थी जो एफडीआर के रकम से कही अधिक थी। वे सभी प्रविष्टियां प्रत्यर्थी के हस्तलेख में थी।

3. दिनांक 09 मार्च 1999 को जब क्षेत्रीय प्रबंधक, लखनउ ने प्रत्यर्थी से दुरभाष से आगे की जांच पड़ताल की तो प्रत्यर्थी उसके तुरन्त बाद, बिना किसी को शाखा की वस्तुएं एवं दस्तावेजों का कार्यभार का हस्तांतरण किए बिना ही एक स्वेच्छिक सेवानिवृति का पत्र दिनांक 09.03.1999 को बैंक की शाखा में छोडकर चला गया। उसने इसके बाद किसी भी समय ड्युटी के लिए रिपोर्ट नहीं किया, यद्यपि 11 मार्च 1999 को

उसे टेलीग्राम भेजा गया था कि वह तुरंत ज्वाइन करें। फिर उसे 12 मार्च 1999 को निलंबित कर दिया गया। एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 13 मार्च 1999 को दर्ज करवाई गयी और प्रत्यर्थी को रोकड़िया के.पी. सिंह के साथ गिरफ्तार किया गया।

4. अपीलकर्ता बैंक ने प्रत्यर्थी के लिए एक आरोप पत्र निम्नानुसार आरोपों को जोड़ते हुए जारी किया:

1. उसने ऋण मांग बीस अस्तित्वविहिन सावधि जमा रसीदों के विरुद्ध राशि 16.48 लाख का काल्पनिक व्यक्तियों को स्वीकृत किया। इस प्रकार उसने 16.48 लाख रुपये का दुर्विनियोंग अस्तित्व विहिन सावधि जमा रसीदों बिना किसी प्रतिभूति के रास्तें ऋण मांग स्वीकृत करके किया।

2. उसने 9 मार्च 1999 को शाखा की वस्तुओं और दस्तावेजों का प्रभार सौंपे बिना ही शाखा छोड़ दी।

3. उसने बिना प्राधिकारी की अनुमति के पद स्थापन का स्थान छोड़ दिया और वह 09.03.1999 से सेवा से फरार हो गया है।

4. वह मैसर्स मार्क ट्युब्स गुडगावं को स्वीकृत की गई ऋण का प्रत्याभूदाता बना था। ऋण उसकी प्रत्याभूति पर स्वीकृत किया गया था जिसके लिए उसने सक्षम प्राधिकारी से पूर्व अनुमति नहीं ली थी। खाता गैर-निष्पादित अस्तियों में परिवर्तित हो गया और उसने ऋण राशि की वसूली के लिए कोई संवेदनशील प्रयास नहीं किए है, और

5. वह अपनी पत्नी श्रीमती सतविंदर कौर का प्रत्याभूतिदाता बना था, जिन्हौने बैंक ऑफ इंडिया, तिलक नगर, नई दिल्ली से मैसर्स पेपर प्रोडक्ट्स के नाम से ऋण लिया था। उसने सक्षम प्राधिकारी से प्रत्याभूतिदाता बनने हेतु कभी अनुमति प्राप्त नहीं की।

जांच पहले शुरु नहीं हो सकी क्योंकि प्रत्यर्थी दिसंबर 2001 तक न्यायिक अभिरक्षा में था। इसके बाद, जांच पूरी की गयी।

5. जांच के दौरान, संबधित अधिकारी के माध्यम से प्रांसगिक दस्तावेज प्रस्तुत किये गये। आरोप संख्या 1 के संबंध में जांच अधिकारी के सम्मुख प्रस्तुत सामग्री यह थी कि अस्तिवविहित सावधि जमा रसीदों के विरुद्ध लगभग 20 ऋण स्वीकृत किए गये। इस आशय का एक चार्ट हमारे सामने प्रस्तुत किया गया और साथ ही दस्तावेजों की फोटो प्रतियां भी जाचं अधिकारी के समक्ष रखी गई हैं। पेज नंबर 21 के संकलन में, ऋण रजिस्टर के पेज की फोटो कॉपी जो क्रम संख्या 54 पर दिखाया गया है, कि जिसमें एफडीआर नंबर 115/86 और 116/86 के विरुद्ध राजेद्र कौर 75000 हजार रुपये का अग्रिम लोन दिया गया। इसी संकलन में पृष्ठ संख्या 54 पर, एफडीआर खाताबही के पेज की फोटो कॉपी जिसमें एफडीआर 115 और 116 अभिलिखित है। एफडीआर संख्या 115 जो 10000 रुपये का है एवं 116 जो केवल 2500 रुपये राशि का है। एफडीआर नंबर 115 नंद कुमार के नाम से है जबकि एफडीआर 116 हरदीप साजिता के नाम से है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि जहां कहि दो एफडीआर की रकम केवल 12500 एक साथ थी।, अग्रिम ऋण 75000 रुपये था और भी तृतीय पक्ष राजेन्दर कोर जिसके नाम पर कोई भी एफडीआर पर नहीं था। उपरोक्त संदर्भित खाता बही के दो निष्कर्षो को दौराने जांच लाया गया जो प्रबंधन प्रदर्श, एमईएक्स बी-1 और एमईएक्स एफ-1.

6. यह बताया है कि यह रकम बैंक के केशियर एक केपी सिंह ने 18 बार एवं एकश्री दीक्षित ने दो अवसरों पर प्रत्यर्थी को सौंपी थी। श्री के पी सिंह ने विभागीय जांच के दौरान यह गवाही/जानकारी दी। उसने उपरोक्त संदर्भित दो निष्कर्षो को साबित किया है। उसने कहा है कि प्रत्यर्थी उसे एफडीआर के विरुद्ध इतनी नकदी पाने के लिए अकसर कहता था और वह उसे नकदी उपलब्ध कराता रहता था। इस प्रकार सभी 20

खातों में प्रविष्टियों को अभिलेख पर लाया गया और कुछ व्यक्तियों को निकासी की अनुमति दी गयी उन प्रदर्शों को दर्शाया गया और खाता प्रविष्टियों में उन सभी अलग-अलग व्यक्तियों के नाम दिखाए गए जिनकें नाम से एफडीआर नहीं थी और भी एफडीआर की रकम जितनी राशि निकालने की अनुमति दी गयी उससे कम थी। जांच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित शब्दों में इस सामग्री को अभिलेख पर लिया:

> "प्रस्तुतकर्ता अधिकारी ने एमईएक्स ए 1-20 एमईएक्स बी 1 से 10, एमईएक्स सी 1 से 20, एमईएक्स सी 1 से 20, एमईएक्स एफ 1 से 20 और एमईएक्स जी 1 से 20 ने भरोसा किया। ये सभी दस्तावेंजों की सभी प्रविष्टियां सीएसओ की लिखावट को दिखाती है। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी ने प्रदर्शो के माध्यम से एमडब्ल्यु 1 द्वारा सीएसओ को किए गए भुगतानों को साबित करने के लिए एमडब्ल्यु 1 को एमईएक्स सी 1 से सी 4, एमईएक्स सी.6 से सी 7, एमईएक्स सी 11 से सी 20 तक लाया। प्रदर्शों के माध्यम से एमईएक्स बी 1 से बी 10 ने प्रस्तुत किया कि जिससे ऐसा कोई अभिलेख नहीं था जिसके माध्यम से एफडीआर को प्रतिभूति के रूप में रखा गया हो। पीओ ने अपनी दलील में एमईएक्स ई.1 से एमईएक्स ई.3 में यह दर्शाने के लिए लाया कि एफडीआर जिसके विरुद्ध ऋण भी उठाया गया था वह उधारकर्ता की नहीं थी और एक का भुगतान लाभार्थी को 11.07.1996 को किया गया था। पीओ द्वारा तर्क दिया कि अग्रिम अस्तित्व में नहीं था।"

7. यद्यपि, प्रत्यर्थी जांच में सम्मिलित हुआ और उसके जवाब के साथ-साथ विस्तृत प्रतिदावा न्यायालय में पेश किया। इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि जो

भी हो कैसे इन 20 लोगों को ऋण दिया गया जबकि एफडीआर उनके नाम से नहीं थे और यह भी कि ऋण की राशि जमा की गई राशि से कहीं अधिक क्यों है? प्रत्यर्थी का केवल यह तर्क था कि जब पहले निरीक्षण किया था तो ऐसा कोई आक्षेप नहीं लगाया था। उसने कहा कि उसने कॉलेज शाखा के विस्तार कांउटर के व्यापार को बढाया था और कैसे वह एक शाखा बनी फिर भी उसके कार्य की सराहना नहीं की गयी। हालांकि किसी भी दुर्भावना को इंगित करने के लिए कोई विवरण नहीं दिया गया था। इसके अतिरिक्त, सभी प्रविष्टियां उसके हस्तलेख में लिखी हुई थी और उसके ओर से कोई स्पष्टीकरण नहीं था। जहां तक श्री केपी सिंह के बयान का मामला है, इसका विरोध करने की मांग की गई कि बैंक अधिकारी उसकी जमानत के लिए जमानतदार बने और इसलिए उसके बयान स्वीकार नहीं किये जाने चाहिए। दस्तावेजी सबूतों को ध्यान में रखते हुये जाहिर तौर ऐसा नही सकता है जो उनके अपने लिखावट में थे और जिनसे दिखाया कि एफडीआर राशि में अग्रिम ऋण राशियों से कही अधिक था और उन्हें उन लोगों के अलावा अन्य व्यक्तियों को दिया गया था जिनके नाम पर एफडीआर जारी किये गये थे।

8.जांच अधिकारी ने, इसलिए, अपनी रिपोर्ट का निष्कर्ष इस प्रकार निकालाः

> ‘‘प्रस्तुतकर्ता अधिकारी और सीएसओ को पेश करने के सबूतों का मूंल्याकन पीओ पक्ष पर भारी पड़ता है। उन्होंने शाखा में उपलब्ध दस्तावेजों को प्रस्तुत किया है और साबित किया है कि प्रत्येक दस्तावेज में अपूर्ण विवरण था। सीएसओ ने खुद को परिसर पर आधारित किया है और उसके पास बचाव में पेश करने के लिए कुछ भी नहीं है। मेरे समक्ष लिखित और मौखिक दोनों साक्ष्यों को देखने के बाद, मैंने सीएसओ के समक्ष प्रश्न पूछा, क्या वह बैंक रिकॉर्ड से एफडीआर का कोई साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है। इसका जवाब

नकारात्मक और टालमटोल वाला था। आगे सवाल उठाया गया कि क्या उधारकर्ताओ को उसके तहत साबित करने के लिए पेश किया जा सकता था। जवाब फिर नकारात्मक आया। इसलिए मेरे समक्ष दस्तावेजो का मूल्यांकन और अन्य प्रांसगिक साक्ष्यों का मूल्यांकन करते हुए, मेरी राय है कि अभियोग 1 से 20 के आधार पर आरोप संख्या 1 साबित होता है।"

9. इसके साथ-साथ, आरोप संख्या 2 और 3 में, 9 मार्च, 1999 को बिना चार्ज सौपें शाखा से चले जाना और इसके बाद फरार हो जाने के आरोपों के संबंध में केवल एकमात्र दलील थी कि जब क्षेत्रीय प्रबंधक ने उनसे बात की, तो उसने इसे फटकारा और, इसलिए, उसने अपना वी. आर. एस. पत्र भेजा। हालांकि, इसके यह स्पष्ट नहीं हुआ कि वह बिना कार्यभार सौंपे कैसे चले गए और उसे कर्तव्य पर वापस बुलाने के लिए टेलीग्राम भेजे जाने के बावजूद वह क्यो नहीं आया।

10. जहां तक आरोप संख्या 4 और 5 के संबंध में तो उसके खिलाफ आरोप था कि सर्वप्रथम एक मामले में एक कंपनी के लिए और फिर अपनी पत्नी के लिए बिना सक्षम प्राधिकारी की अनुमति के प्रत्याभूतिदाता बना। प्रत्यर्थी का एकमात्र बचाव यह था कि इसमें बैंक को कोई हानि नहीं हुई थी, और यदि आवश्यक हो, उसके सेवानिवृत्ति लाभ की राशि या अन्यथा बहाली के बाद नियमित किश्तों से समायोजित की जा सकती है । यह कोई स्पष्टीकरण नहीं था और यह सेवा नियमों के विपरित था और इसलिए जांच अधिकारी ने यह निर्धारित किया कि आरोप सिद्ध हुए थे।

11. जांच रिपोर्ट को विचार करने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकरण जो क्षेत्रीय प्रबंधक थे, वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रत्यर्थी ने पंजाब और सिंध बैंक अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियमन 1981 की खण्ड 3(1) और 15(वी) के साथ-साथ नियम

24 के तहत गलत आचरण किया है। उन्होंने जांच अधिकारी के निष्कर्षों से सहमति जताई। इसलिए, 6 जून, 2003 को दिनांकित आदेश जारी करके उसे सेवा से बर्खास्त करने के साथ ही मौद्रिक नुकसान की वसूली की करने का आदेश दिया और पंजाब और सिंध बैंक अधिकारी/कर्मचारी (अनुशासनात्मक और अपील) विनियमन 1997 के तहत कर दिया। यह आदेश की बाद में आंतरिक अपील और पुनर्विलोकन में पुष्टि की गई है।

12. जैसा कि उपर उल्लेखित है, उपर्युक्त तीन आदेशों को उच्च न्यायालय में उपरोक्त रिट याचिका में चुनौति दी गयी, इन्हे अपास्त कर दिया गया है। प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क किया गया कि जांच अधिकारी द्वारा उसके खिलाफ प्रस्तुत रिपोर्ट अत्यंत अस्पष्ट/अधूरी थी और इसमें जांच अधिकारी द्वारा निकाले गये निष्कर्षो के समर्थन में कोई कारण नहीं थे। उच्च न्यायालय ने उसके दलीलों को स्वीकार कर लिया। यह निर्धारित किया कि जांच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में केवल यह कहा कि प्रत्येक आरोप के समर्थन में कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए गए थे और यह भी कि जवाब में याचिककर्ता के उत्तर में प्रस्तुत दलीलें तर्क संगत नहीं थी और इसलिए, आरोप सिद्ध हुये थे। उच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ न तो विस्तृत थे और न ही उनके प्रकृति का कोई स्पष्टीकरण दिया गया था। यह भी आगे निर्धारित किया कि इसमें कोई विवेचना नहीं थी और कोई प्रस्तुत साक्ष्य के विश्लेषण काफी कम की थी। न्यायालय ने यह भी कहा कि प्रत्यर्थी की दोष सिद्धता साबित करने के लिए साक्ष्यों के आधार पर कोई विशिष्ट निष्कर्ष नहीं निकाले गये। अच्छे कारणों की अनुपस्थिति को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन माना गया। इसलिए, उक्त आदेश को अपास्त कर दिया गया।

13. उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को नये सिरे से जांच करने के सिमित उद्देश्य के लिए प्रत्यर्थी को बहाल करने का निर्देश दिया जोकि प्रबंध निदेशक ईसीआईएल हेदराबाद बनाम बी. कारुनकर एआईआर 1994 एससी 1074 में प्रतिपादित विधि के

अनुसरण में थी। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को एक नई जांच आयोजित करने के लिए और फिर उचित आदेश जारी करने के लिए निर्देशित किया। यह वह आदेश है जिसे हमारे सामने चुनौती दी गयी है।

प्रतिद्वंद्वी के तर्क

14. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री नंदा ने हमें उन विषय-वस्तु/सामग्री की ओर ले गये, जो जांच अधिकारी के समक्ष थी और जिसे उच्च न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष भी प्रस्तुत किया गया था। उन्होंने जांच अधिकारी की रिपोर्ट का संदर्भ दिया और यह बताया कि आरोप कैसे सिद्ध हुए थे। उस रिपोर्ट के सुसंगत गद्यांश पहले ही उद्धृत किये जा चुके हैं। इसलिए, श्री नंदा ने एक प्रश्न उठाया - क्या इस रिपोर्ट को किसी भी रूप में अस्पष्ट/अधूरी कहा जा सकता है? उन्होंने यह दलील दी कि जांच अधिकारी ने प्रत्येक एवं हर दस्तावेज़ के आधार पर अलग-अलग निष्कर्ष नहीं दिये, लेकिन उन्होंने जांच में प्रस्तुत सभी दस्तावेज़ों का संदर्भ दिया और उन्हें विचार किया है। उन्होंने यह तर्क दिया कि रिपोर्ट स्पष्ट रूप से यह दिखाती है कि ऋण रजिस्टर में लेजर प्रविष्टियों और एफडीआर रजिस्टर में प्रविष्टियों के बीच दोनो पंजिकाओ के सुसंगत पृष्ठों को प्रस्तुत कर सहसबंध स्थापित किया गया था। यह सभी प्रविष्टियां प्रत्यर्थी के हस्तलेख में थीं। इससे स्पष्ट रूप से यह दिखा था कि 20 मामलों में, ऋण उन व्यक्तियों को दिया गया था जिनके नाम पर एफडीआर नहीं थे और जारी राशियाँ बहुत अधिक थीं। प्रत्यर्थी ने उन प्रविष्टियों पर विवाद नहीं किया था। इसलिए, जांच अधिकारी ने आवश्यक निष्कर्ष दिया था और उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह मानने में त्रुटि की थी कि साक्ष्यों के आधार पर प्रत्यर्थी की दोष सिद्ध करने के लिए कोई विशिष्ट निष्कर्ष नहीं दिया गया था। श्री नंदा ने यह भी बताया कि एक बार आरोप सिद्ध हो जाने पर, उच्च न्यायालय को बैंक प्राधिकरण के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था, और उन्होंने इस

न्यायालय की तीन न्यायिक निर्णयों पर भरोसा किया “ सुरेश पथरेला बनाम ऑरियन्टल बैक ऑफ कॉमर्स, एआईआर 2007 एससी 199, भारतीय बैक बनाम बेला बागची (2005) 7 एससीसी 435 और दमोह पन्ना सागर ग्रामीण क्षेत्रीय बैक बनाम मुन्ना लाल जैन (2005) 10 एससीसी 84“

15. व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए प्रत्यर्थी ने बार-बार अपनी दलीलें दोहराई जो जांच के दौरान की गई थी। उसने दलील दी कि उसने विस्तारित सेवाकेंद्र में व्यापार को बेहतर बनाया था जिसे सेवा केन्द्र शाखा बन सकें, कि उसें पीडित बनाया गया और कि दस्तावेज़ दुराचार को स्थापित नहीं करते है। न्यायालय के पूछताछ पर वह विवाद नही कर सका कि संबंधित प्रविष्टियां उसके हस्तलेख में थीं। खुद को संतुष्ट करने के लिए, हमने पूछा कि उनके पास उन प्रविष्टियों के संबंध में उसका क्या स्पष्टीकरण था। उनके पास कोई विशिष्ट उत्तर नहीं था। उनका एकमात्र दलील यह थी कि उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों का समर्थन करने के लिए किसी उधारकर्ता का परीक्षण नहीं किया गया था।

<u>परिणामी निष्कर्ष</u>

16. उपर जो कहा गया है उसके मद्देनजर यह बहुत स्पष्ट है कि बैंक ने जांच अधिकारी के समक्ष दुराचरण को स्थापित करने के लिए आवश्यक कदम उठाए थे। संबंधित दस्तावेजों में लेजर प्रविष्टियां सहित संबंधित साक्षीयों के माध्यम से प्रस्तुत की गई थीं। प्रत्यर्थी ने जांच में पूर्ण भाग लिया था। उसके पास जांच के दौरान या उसके बाद किसी समय उसके पास देने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं था। जब सभी प्रासंगिक प्रविष्टियां प्रत्यर्थी के हस्तलेख में थीं, तो बैंक को उधारकर्ता को बुलाना आवश्यक नहीं समझा। वास्तव में, जैसा कि जांच अधिकारी कहते हैं, प्रत्यर्थी को उधारकर्ता को प्रस्तुत करना चाहिए था यदि वह बैंक द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजी साक्ष्य के विरुद्ध कुछ

भी विवाद करना चाहता था। इस परिस्थितियों में, जैसा कि उपर बताया गया है जांच अधिकारी द्वारा निकाले गये निष्कर्ष को बिना किसी साक्ष्य के समर्थन का नहीं ठहराया जा सकता और उच्च न्यायालय ने इस मामलें में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित करने में यह त्रुटी की है कि प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ न तो विस्तृत थे और न ही उनकी प्रकृति की व्याख्या की गयी थी।

17. जिस तरीके से उच्च न्यायालय ने इस मामलें में अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री को काम लिया है उससे हम आश्चर्यचकित है। जांच अधिकारी एक बैंक का अधिकारी है। उसने उसके सम्मुख जो सामग्री प्रस्तुत की गयी उसे विचार में लिया है और उसके प्श्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि दुराचरण साबित हो गया है। शाखा प्रबंधक द्वारा काल्पनिक व्यक्तियों के नाम से बिना स्पष्टीकरण के बडी राशि की निकासी के आरोप से संबंधित मामला था। जब आवश्यक सामग्री अभिलेख पर प्रस्तुत कर दी गयी और आरोपित अधिकारी के पास इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं था, जांच अधिकारी कोई दुसरा रुख नहीं ले सकता था। बैंक अधिकारी के आदेश लिखने का तरीका न्यायिक अधिकारी के आदेश लिखने जैसा नहीं हो सकता है। अब तक यह देखना है कि आदेश पर्याप्त रुप से स्पष्ट है और न्यायोचित ठहराने वाले कारणों को समाहित किये हुये है। उच्च न्यायालय द्वारा इस पक्ष की अनदेखी की। अनुशासनात्मक आदेश में कारणों की अनुपस्थिति आरोपित कर्मचारी को नैसर्गिक न्याय को नकारने जैसा है। लेकिन वर्तमान प्रकरण निश्चयपूर्वक उनमें से एक उस तरह का नहीं है। एक बार जब आरोप साबित हो गये हो। उच्च न्यायालय आदेश में हस्तक्षेप करने को कोई कारण नहीं है। हांलाकि अभिलेख पर पर्याप्त दस्तावेजी साक्ष्य उपलब्ध थे। उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करना चुना कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष अनुचित/विकृत है। एक अनुचित/विकृत निष्कर्ष वो है जो साक्ष्य पर आधारित नहीं हो या एक प्रज्ञावान व्यक्ति उस पर नहीं पहुंचता हो। बहुत समय पहले इस न्यायालय द्वारा यह त्रिवेणी रबर एवं प्लास्टिकस

बनाम सीसीई एआईआर 1994 एससी 1341 दिया था। जब तक यह पाया जाता है कि कुछ महत्वपूर्ण साक्ष्यों का विचार नहीं किया गया है या कि किसी अनुचित साक्ष्य को विचार में लिया गया है, तब तक निष्कर्ष को विकृत नहीं कहा जा सकता। इस बारे में कानूनी स्थिति हाल ही में अरुलवेलु और अन्य बनाम लोक अभियोजक और अन्य द्वारा प्रतिनिधित्व राज्य (2009) 10 एससीसी 206 में दोहराया गया है। इसलिए, उच्च न्यायालय का निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता।

18. जैसा कि टी.एन. सी.एस. कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम के. मीराबाई (2006) 2 एससीसी 255 में यह तय किया गया कि विभागीय अनुशासनात्मक मामले में उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा सीमित है। न्यायालय की टिप्पणीयंा बैंक ऑफ इंडिया बनाम डेगाला श्रीरामुलु (1999) 5 एससीसी 768 में काफी शिक्षाप्रद है।

> " साक्ष्य के कठोर नियम विभागीय जांच प्रक्रिया पर लागू नहीं होते है। कानून की एकमात्र आवश्यकता यह है कि दोषी अधिकारी के विरुद्ध आरोपों को ऐसे साक्ष्य द्वारा स्थापित किए जाने चाहिए जिस पर कार्यवाही करते हुये जो एक उचित व्यक्ति उचित व निष्पक्षता के साथ दोषी अधिकारी के विरुद्ध आरोप को गंभीरता को कायम रखने वाले निष्कर्ष पर पहुंच सकें। केवल अनुमान या शंका विभागीय जांच कार्यवाही में भी दोषसिद्धता की पुष्टि को कायम नहीं रख सकती है। न्यायिक समीक्षा के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाला न्यायालय, विभागीय जांच कार्यवाही में आए तथ्य के निष्कर्षो में हस्तक्षेप नहीं करेगा सिवाय दुर्भावना व विकृति के मामलों कें। उदाहरण जहां किसी निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं है या जहां कोई निष्कर्ष ऐसा है कि कोई भी व्यक्ति तर्कसंगत और निष्पक्षता के साथ

काम करके उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था। न्यायालय साक्ष्य की पुनः विवेचना या अपीलीय प्राधिकरण की तरह मूंल्याकन नहीं कर सकता है । जब तक विभागीय प्राधिकारी द्वारा निकाले गये निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए कुछ सबूत मौजूद है तब तक उसे कायम रखा जाना चाहिए। भारत संघ बनाम एच.सी. गायेल (एआईआर 1964 एससी 364, (1964) 4 एससीआर 718) में संविधान पीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया जा चुका है:

अ- उच्च न्यायालय यह जांच कर सकता है और अवश्य करनी चाहिए कि क्या आलोच्य निष्कर्ष के समर्थन में कोई साक्ष्य है । दुसरे शब्दों में, यदि जांच में दिए गए सम्पूर्ण साक्ष्य को सत्य मान लिया जाए, तो क्या यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रश्नगत आरोप प्रत्यर्थी के खिलाफ साबित हो गया है ? यह दृष्टिकोण साक्ष्य के मूंल्याकन से बचाएगा। यह साक्ष्यों को उसी रुप में लेगा जैसे वह मौजूद है और केवल यह जांच करेगा कि क्या साक्ष्यों पर कानूनी रुप से विवादित निष्कर्ष का अनुसरण करते है या नहीं।''

19. कई प्रकरणों में जिसमें स्टेट बैक ऑफ इण्डिया बनाम बेला बागची (सुप्रा) में न्यायालय यह अभिनिर्धारित कर चुका है कि एक बैंक कार्मिक को ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठा के उच्चतम स्तर का प्रयास करना चाहिए। उसे बैंक के ग्राहकों की जमा राशि की चिंता है ओर वह जमा राशि से किसी भी तरह की छेड़छाड़ की स्वीकृति नहीं दे सकते है। दमोह पन्ना सागर ग्रामीण क्षेत्रिय बैंक के प्रकरण में (सुप्रा) बैंक प्रंबंधक अनाधिकृत निकासी में लिप्त था, बाद में ब्याज सहित राशि का भुगतान किया हालांकि, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अनधिकृत निकासी का यह व्यवहार गंभीर दुराचरण के समान है। वही स्थिति वर्तमान मामले में है। प्रत्यर्थी के हस्तलेखन में

स्पष्ट दस्तावेजी प्रमाण था जिससे उसकी भूमिका फर्जी/काल्पनिक लोगों के लिए अधिक मात्रा में अवैध निकासी में साबित हुई। बहीखाता प्रविष्टियां साफ तौर पर प्रदर्शित करती है कि हालांकि विभिन्न नामों सें एफडीआर थे, निकासियों का नाम पूरी तरह भिन्न व्यक्तियों के थे और वे एफडीआर की राशियों के बहुत अधिक थे। प्रत्यर्थी के पास कोई स्पष्टीकरण नहीं था और, इसलिए, इसे अभिनिर्धारित किया जाना था कि प्रत्यर्थी ने राशि की दुर्विनियोग किया था। जांच अधिकारी द्वारा एक अच्छे सकारण आदेश के बावजूद, उच्च न्यायालय ने उसे अधूरा/अस्थिर कहकर हस्तक्षेप किया है। जैसा कि इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णयों में उपेक्षा की थी, उच्च न्यायालय ने बैंक प्रबंधक की भूमिका को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है।

20. इन तथ्यों और परिस्थितियों में हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए आलोच्य निर्णय और आदेश को अपास्त करते है। उच्च न्यायालय में प्रत्यर्थी द्वारा दायर याचिका खारिज होगी। परिणामस्वरुप, उनके द्वारा शुरू की गई अवमानना की कार्यवाही भी खारिज हो जाएगी।

केकेटी

अपील की अनुमति।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवाद न्यायिक अधिकारी कुलदीप शर्मा (आर.जे.एस) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निण्रय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता हे। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।